116

ओ३म्

वैदिक सन्ध्यार्थ प्रकाश

आनन्द मुनि

116

ओ३म्

वैदिक सन्ध्यार्थ प्रकाश

(अध्यात्ममाला—प्रथम पुष्प)

लेखन व सम्पादन:

आनन्द मुनि

प्रकाशक :

संस्कृत सेवा संस्थान

५९/८, मध्य मार्ग, तुगलकाबाद विस्तार,

नई दिल्ली-११० ०१९

दूरभाष : ६९८१००२

प्रकाशक : **संस्कृत सेवा संस्थान**
५९/८, मध्यमार्ग, तुगलकाबाद विस्तार,
नई दिल्ली-११० ०१९
दूरभाष : ६९८१००२

प्राप्ति स्थान : १ **वेद मन्दिर (दयानन्द संस्थान)**
लेखराम नगर-(इब्राहीमपुर),
पो० मुखमेलपुर, दिल्ली-३६
दूरभाष : ७२०२२४९, ७२०३००१
२. **संस्कृत सेवा संस्थान**
५९/८, मध्य मार्ग, तुगलकाबाद
विस्तार, नई दिल्ली-१९
दूरभाष : ६९८१००२
३. **दर्शन योग महाविद्यालय**
आर्यवन विकास क्षेत्र, रोजड़,
पत्रालय सागपुर, जिला साबरकांठा,
गुजरात-३८३ ३०७
दूरभाष : ०२७७४-७७२१७

संस्करण : तृतीय, १९९९

शब्द संयोजन व मुद्रण : **भगवती लेज़र प्रिंट्स,** नई दिल्ली-६५
दूरभाष : ६४१४३५९

परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना क्यों ?

(१) '(**प्रश्न**) परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए वा नहीं ?' (**उत्तर**) करनी चाहिये। (**प्रश्न**) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा ? (**उत्तर**) नहीं। (**प्रश्न**) तो फिर स्तुति, प्रार्थना क्यों करना ? (**उत्तर**) उनके करने का फल अन्य ही है। (**प्रश्न**) क्या है ? (**उत्तर**) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

—स०प्र० सप्तम समु०

(२) स्तुति दो प्रकार की होती है—एक सगुण और दूसरी निर्गुण। दोनो की परिभाषा देते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—'जिस जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण..... जिस जिस राग-द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है, वह निर्गुण स्तुति है। इससे फल यह है कि "जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।"

—स०प्र० ७ समु०

(३) 'जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही वर्तमान करना चाहिये, अर्थात् जैसे सर्वोतम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे, अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।'

'जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। ..... परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक

होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड मीठा है ऐसा कहता है, उसको गुड प्राप्त या उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है, उसको शीघ्र या विलम्ब से गुड मिल ही जाता है।' —स० प्र० ७ समु०

(४) उपासना की विधि और फल—'जब उपासना करना चाहें, तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में (आदि) किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवें।'

(५) 'जब इन साधनों को करता है, तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़कर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।'

'जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा, वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है।'

(६) 'और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखेहैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।' —स० प्र० ७ समु०

(७) कृतघ्न व्यक्तियों के लिये कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है—महर्षि वाल्मीकि रामायण (किष्किन्धाकाण्ड सूक्त ३४, श्लोक १२) में लिखते हैं—

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता शास्त्रैः कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः॥

अर्थात् गायों की हत्या करनेवाले, शराब पीनेवाले, चोरी करनेवाले और व्रतों को तोड़नेवाले के लिये शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान किया है, अर्थात् वे व्यक्ति प्रायश्चित्त करके दुष्कर्मों से बच सकते हैं, परन्तु जो व्यक्ति कृतघ्न, अर्थात् परमेश्वर तथा उपकार करनेवाले माता, पिता व गुरुजनों का उपकार नहीं मानता है, उस कृतघ्न के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है, अतः मननशील व्यक्तियों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना (अवश्य) करनी चाहिये।

(८) जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव, विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्यादिलोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है, उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते और उसका ध्यान नहीं करते हैं, वे नास्तिक मन्दगति सदा दुःखसागर में डूबे ही रहते हैं। इसलिये सर्वदा उसीको जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

—स० प्र० सप्तम समु०

''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति.....''

विषयानुक्रम

क्र०	विषय	पृ० संख्या
१.	परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना क्यों ?	३
२.	आचमन मन्त्र	७
३.	इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र	८
४.	मार्जन मन्त्र	९
५.	प्राणायाम मन्त्र	१०
६.	अघमर्षण मन्त्र	१०
७.	मनसा परिक्रमा मन्त्र	१३
८.	उपस्थान मन्त्र	२०
९.	गायत्री मन्त्र	२६
१०.	समर्पण वाक्य	२८
११.	नमस्कार मन्त्र	२८
१२.	अमृत वचन	२९
१३.	ऋषियों का सन्देश	३०
१४.	गीत (परमात्मा के सभी गीत गाओ)	३१
१५.	पुस्तक सूची	३२

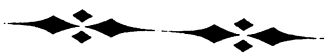

ओ३म्

मन्त्रों का अन्वय-अर्थ

(सर्व प्रथम ओ३म् ध्वनि पूर्वक गायत्री मन्त्र बोलकर शिखा बन्धन एवम् उपासना की सज्जा करें)

(१) आचमन मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥

ओ३म्	=	वह आनन्द स्वरूप, सर्वरक्षक
देवीः	=	दिव्य गुणों से युक्त, सर्व प्रकाशक, सर्वानन्द प्रदाता
आपः	=	सर्वव्यापक परमेश्वर
नः	=	हमारे
अभिष्टये	=	मनोवांछित सुख (इष्टानन्द=धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति हेतु तथा
पीतये	=	पूर्णानन्द (मोक्षानन्द) की प्राप्ति के लिये
शम्	=	कल्याणकारी
भवन्तु	=	होवे (अर्थात् हमारा कल्याण करे) एवम्
नः	=	हम पर (हमारे लिये)
शंयोः	=	सुख-शान्ति की
अभिस्त्रवन्तु	=	सर्वदा सब ओर से वर्षा करे।

भावार्थ—हे दिव्य गुणयुक्त, सर्वप्रकाशक, आनन्द प्रदाता, सर्वत्र विद्यमान परमेश्वर! आप हमारे मनोवांछित सुख (इष्टानन्द=धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति के लिये एवं पूर्णानन्द (मोक्षानन्द) की प्राप्ति के हेतु कल्याणकारी होवें, अर्थात् हमारा कल्याण करें और हम पर सुख-शान्ति की सर्वदा सब ओर से वर्षा कीजिए।

(२) इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र

ओ३म् वाक् वाक्। ओम् प्राणः प्राणः। ओम् चक्षुः चक्षुः। ओम् श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओम् नाभिः। ओम् हृदयम्। ओम् कण्ठः। ओम् शिरः। ओम् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओम् करतल करपृष्ठे।

वाक् वाक्	=	हे ईश्वर! मेरी वाणी और रसनेन्द्रिय
प्राणः प्राणः	=	मेरी प्राण शक्ति और घ्राणेन्द्रिय
चक्षुः चक्षुः	=	मेरे दोनों नेत्र
श्रोत्रम् श्रोत्रम्	=	मेरे दोनों कान
नाभिः	=	मेरे शरीर की नस-नाड़ियों का केन्द्र नाभि
हृदयम्	=	मेरा हृदय
कण्ठः	=	मेरा कण्ठ (गला)
शिरः	=	मेरा सिर (मस्तिष्क)
बाहुभ्याम्	=	मेरी दोनों भुजाएँ और
करतल करपृष्ठे	=	मेरे दोनों हाथों की हथेलियों तथा उनका पृष्ठ भाग इन्द्र-आत्मा के ये सम्पूर्ण साधन)
यशोबलम्	=	आयु पर्यन्त स्वस्थ, सुदृढ़, बलवान्, यशस्वी एवं निर्दोष (निष्कलंक) बने रहें।

भावार्थ—हे परम पिता परमेश्वर! आपसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि हमारी वाणी और रसनेन्द्रिय, हमारी प्राणशक्ति और घ्राणेन्द्रिय, हमारे दोनों नेत्र, दोनों कान, शरीर और नस-नाड़ियों का केन्द्र नाभि, हमारा हृदय भाग, कण्ठ, सिर (मस्तिष्क) दोनों भुजाएँ, दोनों हाथों की हथेलियाँ और उनका पृष्ठ भाग ये आत्मा के सम्पूर्ण साधन आयु पर्यन्त स्वस्थ, सुदृढ़, बलवान् यशस्वी एवं निर्दोष (निष्कलंक) बने रहें।

(३) मार्जन मन्त्र

ओम् भूः पुनातु शिरसि। ओम् भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओम् स्वः पुनातु कण्ठे। ओम् महः पुनातु हृदये। ओम् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओम् तपः पुनातु पादयोः। ओम् सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओम् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

भूः शिरसि पुनातु	=	प्राण स्वरूप प्राणप्रिय परमेश्वर मेरे सिर (मस्तिष्क) में पवित्रता करे।
भुवः नेत्रयोः पुनातु	=	सर्व दुःख विनाशक प्रभु मेरे दोनों नेत्रों में पवित्रता करे।
स्वः कण्ठे पुनातु	=	आनन्द स्वरूप ईश्वर मेरे कण्ठ में मेरी वाणी में पवित्रता करे।
महः हृदये पुनातु	=	सबसे महान् पूज्यप्रभु मेरे हृदय (आत्मा) में पवित्रता करे।
जनः नाभ्याम् पुनातु	=	सर्वोत्पादक प्रभु मेरे नाभि प्रदेश में पवित्रता करे।
तपः पादयोः पुनातु	=	दुष्टों का सन्तापक और ऐश्वर्यवान्, ज्ञानविज्ञान स्वरूप प्रभु मेरे दोनों पैरों में पवित्रता करे।
सत्यं शिरसि पुनः पुनातु	=	सत्यस्वरूप, सत्प्रेरक, अविनाशी प्रभु मेरे सिर (मस्तिष्क) में पुनः पुनः पवित्रता करे।
खं ब्रह्म सर्वत्र पुनातु	=	सर्वव्यापक महान् ईश्वर मेरे सम्पूर्ण शरीर में पवित्रता प्रदान करे।

भावार्थ—हे परम पवित्र प्रभो! सांसारिक विषयों में ग्रस्त हो जाने के कारण मेरे शरीर और इन्द्रियों में सांसारिक दोष, तमस्, कुसंस्कार, दुःस्वभाव आदि मल (अशुद्धियाँ) आ गए हैं। मैं इनसे छूटकर आपके द्वारा प्रदत्त शरीरेन्द्रियों से सदा शुभ कर्म ही करूँ, अशुभ-पवित्र कर्म कभी न करूँ, अतः आपसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि मेरे सिर (मस्तिष्क), नेत्र, कण्ठ (गला), हृदय, नाभि, पैर और पुनः सिर आदि सभी इन्द्रियों में पवित्रता (दोषत्याग) दीजिये। हे सर्वव्यापक महान् ईश्वर! मेरे सम्पूर्ण शरीर में पवित्रता (शुद्धि-सफाई) दीजिये। मुझे अन्तःकरण बाह्यकरण आदि सब ओर से शुद्ध पवित्र कर दीजिये।

(४) प्राणायाम मन्त्र

ओम् भूः । ओम् भूवः । ओम् स्वः । ओम् महः । ओम् जनः । ओम् तपः । ओम् सत्यम् ।

भूः	=	आप प्राणस्वरूप, प्राण से भी प्रिय
भुवः	=	सर्व दुःख विनाशक
स्वः	=	सुख-आनन्द स्वरूप, सुखदाता
महः	=	सबसे महान्, पूजनीय
जनः	=	सर्वोत्पादक
तपः	=	दुष्टों के सन्तापक, ज्ञानविज्ञान स्वरूप
सत्यम्	=	सत्यस्वरूप, सत्प्रेरक, अविनाशी हैं।

भावार्थ—हे प्राणस्वरूप, सर्वदुःख विनाशक, सुखस्वरूप-सुखदाता सर्वमहान्, जगत् उत्पादक, परमज्ञानी-तेजस्वी, अविनाशी परमेश्वर! आपसे विनम्र प्रार्थना है कि इस सम्पूर्ण प्राणायाम प्रक्रिया में आपको स्मरण करता रहूँ। इस क्रिया और मेरे शुद्ध आचरण से मुझ में बुद्धि, स्मृति, एकाग्रता, मानसिक बल-प्रसन्नता, कुसंस्कारों का नाश और सुसंस्कारों की वृद्धि हो। आपके प्रति श्रद्धा और प्रेम निरन्तर बढ़ता रहे एवम् आपकी अनुभूति भी मुझे होती रहे।

(५) अघमर्षण मन्त्र

ओम् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्य जायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

अभिद्धात्	=	(ईश्वर के) सर्वत्र प्रदीप्त ज्ञानमय
तपसः	=	अनन्त सामर्थ्य से
ऋतम्	=	यथार्थ में सब सत्य विद्याओं के आधार वेद-शास्त्र
च	=	और
सत्यम्	=	(स्थूल-सूक्ष्म जगत् की कारण मूल प्रकृति से) त्रिगुणमय कार्य जगत्
अध्यजायत	=	यथापूर्व उत्पन्न हुआ
च	=	और

ततः	=	उसी ईश्वर के सामर्थ्य से
रात्री	=	प्रलयान्तर रात्रि-महारात्रि और
ततः	=	उसी के सामर्थ्य से
समुद्रः	=	पृथिवीस्थ समुद्र (और)
अर्णवः	=	आकाशस्थ मेघमण्डलीय महा समुद्र
अजायत	=	उत्पन्न हुए।

भावार्थ—हे अतुल बल-पराक्रमी, सृष्टिकर्त्ता जगदीश्वर! आपने अपने अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य से सब सत्य विद्याओं के मूलाधार वेद एवं त्रिगुणमय कार्य जगत् की रचना की है। आपने ही पृथ्वी पर स्थित समुद्र, नदी, पर्वत, जंगल, वायुमण्डल, वनस्पति, कन्दमूल, फल फूल, घास, अन्न, शाकादि आदि पदार्थों को बनाया है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, कृमि आदि समस्त जीवों के शरीरों की रचना भी आपने ही की है अन्य किसी ने नहीं।

अतः हे जगत्कर्ता! आपकी इन अनन्त शक्तियों और गुणों का ध्यान रखते हुए हम पाप करने से डरें और सदा शुभ (पुण्य) कर्म ही करें, पाप कर्म नहीं। हे प्रभो! आप अघमर्षक हो, हमारे पापों का मर्षण (विनाश) कीजिये और हमें निरघ-निष्पाप बना दीजिये॥ १॥

(६)

समुद्रा-दर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥

विश्वस्य	=	समस्त चराचर संसार को
वशी	=	वश में रखनेवाले परमात्मा के
मिषतः	=	अपने अनन्त सहज सामर्थ्य (स्वभाव) से
समुद्रात्	=	पृथिवीस्थ समुद्र और
अर्णवात्	=	आकाशीय समुद्रादि पदार्थों के
अधि	=	पश्चात्
संवत्सरः	=	क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि वार्षिक काल विभाग

अजायत	=	उत्पन्न हुआ (साथ ही ईश्वर ने)
अहोरात्राणि	=	दिन और रात्रि विभागों को भी
विदधत्	=	बनाया

भावार्थ—हे समस्त चराचर जगत् को वश में रखनेवाले परमात्मन्! आकाश और पृथिवी के समुद्रों की रचना के पश्चात् आपने ही क्षण, पल, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, मन्वन्तर आदि के रूप में काल का विभाग किया है। हे सर्वनियन्ता आप ही इन सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों के वास्तविक स्वामी हो, इन्हें अपने सहज स्वभाव से वश में रखनेवाले हो और यथासमय प्रकृति रूप कारण से सृष्टि, प्रलय करते रहते हो॥ २॥

(७)

सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्ष मथो स्वः॥ ३॥

धाता	=	सकल जगत् के निर्माता, धारक, पोषक, नियामक प्रभु ने
सूर्याचन्द्रमसौ	=	सूर्य, चन्द्र आदि लोकों, (ग्रह, उपग्रहों) को
च	=	और
दिवम्	=	द्युलोक (सूर्यादि लोकों के रूप में) अपने सर्वोत्तम प्रकाश को
पृथिवीम्	=	पृथिवी (भूमि) लोक को
च	=	और
अन्तरिक्षम्	=	अन्तरिक्ष को (ग्रहों के मध्याकाश एवं तत्रस्थ लोकों को)
अथ	=	और
स्वः	=	ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित अन्य लोक-लोकान्तरों को
यथापूर्वम्	=	जगत् रचने का ज्ञान जैसा उसके सर्वज्ञ विज्ञान में था वैसे ही जीवों के पाप पुण्य के अनुसार उनके देहादि को पूर्व कल्प-सृष्टि के समान ही

अकल्पयत् = बनाया (रचना की)

भावार्थ—हे समस्त संसार के निर्माता, धारक, पोषक, नियामक प्रभो! जगत् रचना का जैसा ज्ञान-विज्ञान आपकी सर्वज्ञता में पहले से था, ठीक वैसा ही सूर्य, चन्द्र आदि लोकों (ग्रह, उपग्रहों) को, सूर्यादि के रूप में अपने सर्वोत्तम प्रकाश (द्युलोक) को, पृथिवी (भूमि) लोक को और अन्तरिक्ष (ग्रहों के मध्याकाश) को तथा ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित अन्य लोक-लोकान्तरों को एवम् उनके पाप, पुण्य के अनुसार सभी जीवों के देहादि को पूर्व कल्प की सृष्टि के समान ही बनाया है॥ ३॥

हे सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आप समस्त जगत् के कण कण में व्यापक होकर इसका नियन्त्रण-नियमन कर रहे हो। सम्पूर्ण विश्व के सभी प्राणियों द्वारा मन, वाणी, शरीर से की जानेवाली सभी क्रियाओं के आप प्रत्यक्ष द्रष्टा, ज्ञाता हो। आपसे छिपकर कोई भी प्राणी कभी भी, कहीं भी, किसी भी कर्म को नहीं कर सकता। हे न्यायकारी! जब आप मेरे प्रत्येक कर्म के ज्ञाता हैं ही, तो आपकी उपस्थिति सर्वत्र जानकर मैं कभी भी, एक क्षण के लिये भी मन, वचन, कर्म में पाप भावना को न लाऊँ, मुझे ऐसा सामर्थ्य, ज्ञान, बल प्रदान करो। यही मेरी आपसे विनय है, जिसे आप अपनी कृपा से अवश्य पूर्ण काजिये।

(८) मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओम् प्राचीदिगग्नि रधिपति रसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥

अग्निः = वह ज्ञान-प्रकाश स्वरूप परमात्मा ही
प्राची दिक् = पूर्व दिशा में विद्यमान सभी पदार्थों का
अधिपतिः = स्वामी है।
असितः = वह सर्वथा बन्धन रहित ईश्वर ही
रक्षिता = सब प्रकार से हमारी रक्षा करने वाला है
आदित्याः = सूर्य की किरणें (ईश्वरीय गुण) एवम् प्राण
इषवः = उसके रक्षक बाण के तुल्य हैं अज्ञान अन्धकार की नाशक हैं

तेभ्यः नमः	=	उन ईश्वरीय गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले ईश्वर रचित सभी पदार्थों को हमारा नमस्कार हो
अधिपतिभ्यः	=	उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों को एवं प्राणों को हमारा
नमः	=	नमस्कार हो
रक्षितृभ्यः नमः	=	उन रक्षक ईश्वरीय गुणों और ईश्वर रचित सभी पदार्थों को नमस्कार हो
इषुभ्यः नमः	=	उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो। हम उनसे यथायोग्य उपयोग लें।
एभ्यः नमः अस्तु	=	इन सबको हमारा नमस्कार हो।
यः अस्मान् द्वेष्टि	=	जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है अथवा
यं वयं द्विष्मः	=	जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं
तम्	=	उन दोनों के द्वेष भाव (बुराई) को
वः जम्भे	=	आपके जम्भ=मुख अथवा न्याय व्यवस्था रूपी जबड़े में, वश में
दध्मः	=	रखते हैं, दग्ध करते हैं। उस द्वेषभाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

भावार्थ—(१) हे ज्ञान प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आपही पूर्व दिशा में विद्यमान सभी पदार्थों के स्वामी हैं, आप सर्वथा बन्धन रहित हैं, सब प्रकार से हमारी रक्षा करनेवाले हैं। सूर्य की किरणें एवं आपके गुण हमारी रक्षा करनेवाले बाण के तुल्य हैं। वे अन्धकार एवं हमारे अज्ञान अन्धकार के नाशक हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य

सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(९)

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्ति रश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ २॥

इन्द्रः	=	पूर्ण, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही
दक्षिणा दिक्	=	दक्षिण दिशा स्थित समस्त पदार्थों का
अधिपतिः	=	स्वामी है
तिरश्चिराजी	=	तिर्यग्योनि के प्राणियों (वृश्चिक, कीट-पतंग आदि जीवों की पंक्ति, श्रृंखला, समूह) से (उनके माध्यम से) हमारी
रक्षिता	=	रक्षा करनेवाला है अथवा रक्षा करे।
पितरः	=	ज्ञानी (पितर) लोग जिसके
इषवः	=	रक्षक बाण के तुल्य हैं
तेभ्यः नमः	=	आदि का अर्थ पूर्वात् है।

भावार्थ—(१) हे पूर्ण एवं परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर! आप ही दक्षिण दिशा के अधिपति हो, इस दिशा में स्थित सभी पदार्थों के स्वामी हो। आप तिर्यग्योनि (वृश्चिक, कीट, पतंग आदि जीवों की पंक्ति—समूह से हमारी रक्षा करनेवाले हो। इस दिशा में पितर (ज्ञानी) जन ही हमारे लिये रक्षक बाण के तुल्य हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों

को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(१०)

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधि पतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ३॥

वरुणः = सबके द्वारा वरणीय सर्वोत्तम परमेश्वर ही

प्रतीची दिक् = पश्चिम दिशा में स्थित समस्त पदार्थों का

अधिपतिः = स्वामी है, वह

पृदाकू = बड़े बड़े अजगर, सर्पादि विषधर प्राणियों से (उनके द्वारा हमारी)

रक्षिता = रक्षा करनेवाला है

अन्नम् = पृथिवी के भोज्य, पेय, अन्न, फल, जल, शाकादि पदार्थ उसके

इषवः = बाण के तुल्य हैं, जो हमारे जीवन रक्षक और दुष्ट-शत्रु वा रोग नाशक हैं

तेभ्यः नमः = आदि का अर्थ पूर्ववत् है।

भावार्थ—(१) हे सबके द्वारा वरणीय सर्वोत्तम परमेश्वर! आप पश्चिम दिशा के अधिपति (स्वामी) हो। इस दिशा में स्थित सभी पदार्थों के स्वामी हो। इस दिशा में आप अजगर, सर्पादि विषधर प्राणियों के द्वारा हमारी रक्षा करनेवाले हो। इधर पृथिवी के भोज्य, पेय अन्न, जल, फल, शाकादि पदार्थ ही हमारे जीवन रक्षक बाण के तुल्य हैं, वे रोग-शोक, दुष्ट-शत्रु से हमारी

रक्षा करते हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(११)

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ४॥

सोमः = वह शान्ति, आनन्द प्रदाता परमात्मा ही

उदीची दिक् = उत्तर दिशा में स्थित समस्त पदार्थों का

अधिपतिः = स्वामी है

स्वजः = वह अजन्मा ईश्वर

रक्षिता = सबका सब प्रकार से रक्षक है और

अशनिः = आकाशीय विद्युत (बिजलियाँ)

इषवः = जिसके बाण के तुल्य हैं

तेभ्यः नमः = आदि का अर्थ पूर्ववत् है।

भावार्थ—(१) हे सोम! शान्ति-आनन्द प्रदाता परमात्मन्! आप उत्तर दिशा एवं समस्त पदार्थों के अधिपति-स्वामी हो। हे अजन्मा ईश्वर! आप सब प्रकार से हमारे रक्षक हो। इस दिशा में आकाशीय विद्युत् ही हमारे लिये रक्षक बाण के तुल्य हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में, आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(१२)

ध्रुवादिग् विष्णु-रधिपतिः कल्माष-ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥५॥

विष्णुः = वह सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ही
ध्रुवादिक् = नीचे पृथिवी की ओर वाली दिशा के सभी पदार्थों का
अधिपतिः = स्वामी है, वह इस दिशा में
कल्माष ग्रीवः = हरित रंगवाले या कल्माष ग्रीवा वाले वृक्ष-वनस्पतियों के द्वारा
रक्षिता = हमारी रक्षा करनेवाला है और
वीरुधः = लता-बेल-वृक्ष आदि ही जिसके
इषवः = बाण के तुल्य हैं
तेभ्यः नमः = आदि का अर्थ पूर्ववत् है।

भावार्थ—(१) हे विष्णो=सर्वत्र व्यापक परमेश्वर! आप नीचे पृथिवी की ओर वाली दिशा एवं उसमें स्थित सभी पदार्थोंके अधिपति (स्वामी) हो। इस दिशा में हरित या कल्मष ग्रीवावाले वृक्ष, वनस्पतियाँ हमारे लिये रक्षक बाण के तुल्य हैं, उन लता, बेल, वृक्षादि के द्वारा आप हमारी रक्षा करनेवाले हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों

को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में, आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(१३)

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ६॥

बृहस्पतिः	=	वेद शास्त्र आदि वाणी का स्वामी तथा इस समस्त ब्रह्माण्ड का पालक ईश्वर
ऊर्ध्वादिक्	=	ऊपर आकाशीय सभी लोक-लोकान्तरों का
अधिपतिः	=	स्वामी है, वही
श्वित्रः	=	उज्ज्वल, ज्ञानमय, शुद्ध स्वरूप परमेश्वर
रक्षिता	=	हमारा रक्षक है
वर्षम्	=	वर्षा की बूँदे ही जिसकी
इषवः	=	बाण के तुल्य हैं
तेभ्यः नमः	=	आदि का अर्थ पूर्ववत् है।

भावार्थ—(१) हे वेदशास्त्र आदि वाणी के स्वामी! तथा इस समस्त ब्रह्माण्ड के पालक ईश्वर! आप ऊपर आकाशीय सभी लोक-लोकान्तरों के अधिपति (स्वामी) हैं। हे परमेश्वर! आप ही शुद्ध-उज्ज्वल, ज्ञानमय स्वरूप से हमारे रक्षक हो। हमारी रक्षा हेतु वर्षा की बूँदें ही रक्षक बाण के तुल्य हैं उनसे आप हमारी रक्षा करते हैं।

(२) उन आपके गुणों एवं जगत् की रक्षा करनेवाले आपके

रचित सभी पदार्थों को, उन प्रधान ईश्वरीय शक्तियों एवं प्राणों को, उन रक्षक ईश्वरीय गुणों को एवं उन बाण तुल्य उपायों को भी हमारा नमस्कार हो, अर्थात् हम उनका यथायोग्य सदुपयोग करें, इस प्रकार इन सबको हमारा आदर हो।

(३) हे ईश्वर! जो व्यक्ति अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है, अथवा जिसके प्रति अज्ञान से हम द्वेष करते हैं, उन दोनों के ही द्वेष भाव (बुराई) को हम आपके वश में, आपके न्यायरूपी मुख के जबड़े (दाढ़) में रखते हैं, दग्ध करते हैं, अर्थात् आपके न्याय पर छोड़ते हैं। हे प्रभो! उस द्वेष भाव को दूर करने में आप हमारे सहायक होवें।

(१४) उपस्थान मन्त्र

उपस्थान मन्त्रों के अर्थ चिन्तन पूर्वक ऐसी बुद्धि-अनुभूति करें कि "परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अति निकट परमेश्वर है, वह प्रभु हमारे सब ओर व्यापक है, हम सब उस सर्वरक्षक, सर्वशक्तिमान्, प्रकाश स्वरूप प्रभु की पवित्र गोद में बैठे हुए हैं।"

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति रुत्तमम्॥ १॥

वयम्	=	हम सब उस
तमसः परि	=	अज्ञान अन्धकार से सर्वथा परे (पृथक्)
स्वः	=	सर्वसुख-सर्वानन्द स्वरूप ईश्वर को
उत्तरम्	=	जगत् की प्रलय के अनन्तर भी अपने नित्य स्वरूप से सदा वर्तमान रहनेवाले
देवत्रा	=	समस्त दिव्य गुणवाले पदार्थों में श्रेष्ठ, देवों में भी देव (प्रकाशकों के प्रकाशक)
देवम्	=	अनन्त दिव्य गुणों से युक्त, धर्मात्मा-मुमुक्षु-भक्त-मुक्तात्माओं को सर्वानन्द और प्रसन्नता देनेवाले
सूर्यम्	=	चराचर जगत् के आत्मा, संचालक, प्रेरक, आधार

उत्तमम्	=	सर्वोत्तम, सर्वोत्कृष्ट
ज्योतिः	=	ज्ञान स्वरूप, स्वप्रकाश स्वरूप ईश्वर को
पश्यन्तः	=	इन रूपों में देखते हुए, जानते हुए (समझकर) ही
उत्=अगन्म	=	उसे उत्कृष्ट सत्य श्रद्धा से प्राप्त हुए हैं, उस प्रभु की शरण में आए हैं, अथवा उत्तमता पूर्वक श्रद्धावान् होकर उसको प्राप्त करें।

भावार्थ—हम सब उस अज्ञान अन्धकार से सर्वथा परे (पृथक्), सर्व सुख (सर्वानन्द) स्वरूप ईश्वर को, जगत् की प्रलय के अनन्तर भी अपने नित्य स्वरूप से सदा वर्तमान रहनेवाले, समस्त दिव्य गुणवाले पदार्थों और देवों में भी सर्वश्रेष्ठ, प्रकाशकों के प्रकाशक, अनन्त दिव्य गुणों से युक्त, धर्मात्मा-मुमुक्षु-भक्त-मुक्तात्माओं को सर्वानन्द और प्रसन्नता देनेवाले, चराचर जगत् के आत्मा-संचालक-प्रेरक-आधार—सर्वोत्तम-सर्वोत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप-स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर को इन विभिन्न रूपों में देखते, जानते, समझते हुए ही उसे उत्कृष्ट सत्य श्रद्धा से प्राप्त हुए हैं, उस प्रभु की शरण में आए हैं अथवा श्रद्धा और उत्तमता पूर्वक हम उसे प्राप्त करें।

(१५)

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥

उ	=	अच्छे प्रकार, निश्चय से
जातवेदसम्	=	सर्ववेत्ता, सर्वज्ञान प्रद, वेदों के उत्पादक, प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त, सब जगत् के ज्ञाता, रचयिता
सूर्यम्	=	जो सकल जीवादि चराचर जगत् का आत्मा उत्पादक, आधार, प्रकाशक है
त्यम् (तम्)	=	उस
देवम्	=	दिव्य गुण युक्त, देवाधिदेव ईश्वर को

विश्वाय दृशे = पूर्ण रूप से सबको देखने दिखाने, ज्ञान कराने (विश्व विद्या की प्राप्ति) हेतु ही

केतवः = ये किरणें या पताकाएँ, सृष्टि की सभी पृथक्-पृथक् रचनाएँ, उनके संचालक,-नियामक,-ज्ञापक,-प्रकाशक ईश्वरीय गुण, वैदिक ऋचाएँ, ईश्वर की सत्ता बोधक सभी वस्तुएँ, शक्तियाँ या बुद्धियाँ

उद्=वहन्ति = उसे उत्कृष्टता से, भली भाँति निश्चय पूर्वक जनाती हैं, प्रकाशित करती हैं, प्राप्त कराती हैं, अतः हम उस विश्व के आत्मा-अन्तर्यामी परमेश्वर की ही सदा उपासना किया करें।

भावार्थ—अच्छे प्रकार-निश्चय से जो (ईश्वर) सर्ववेत्ता, सर्वज्ञानप्रद, वेदों का उत्पादक, प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त, सब जगत् का रचयिता, ज्ञाता है। जो सकल जीवादि चराचर जगत् का आत्मा, उत्पादक, आधार और प्रकाशक है, उस दिव्य-गुणयुक्त, देवाधिदेव ईश्वर को पूर्णतया सबके लिये देखने, दिखाने, ज्ञान कराने अथवा विश्वविद्या की प्राप्ति हेतु ही ये (केतवः) किरणें या पताकाएँ, सृष्टि की सभी पृथक् पृथक् रचनाएँ, उनके संचालक-नियामक-प्रकाशक-ज्ञापक ईश्वरीय गुण, वैदिक ऋचाएँ, ईश्वर की सत्ताबोधक सभी वस्तुएँ, शक्तियाँ या बुद्धियाँ उसे (उस ईश्वर को) उत्कृष्टता से, भलीभाँति निश्चयपूर्वक जनाती हैं, प्रकाशित करती हैं, प्राप्त कराती हैं, अतः हम उस विश्व के आत्मा-अन्तर्यामी परमेश्वर की ही सदा उपासना किया करें।

(१६)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थु षश्च स्वाहा॥ ३॥

चित्रम् = वह परमात्मा बड़े विचित्र, विलक्षण, अद्भुत स्वरूप और शक्तिवाला है

देवानाम्	=	वह दिव्य गुण-कर्म स्वभाववाले विद्वानों का एवं उनके दुःख नाश हेतु
अनीकम्	=	परम उत्तम बल है, आश्रय है और
उत्	=	वह भली भाँति सम्यक् प्रकार से (उनके हृदयों में)
अगात्	=	प्रकट, प्रकाशित, प्राप्त (पहुँचा हुआ) है, वह
मित्रस्य	=	रागद्वेष रहित, मित्र भाववाले उपासक का, सूर्यलोक व प्राण का
वरुणस्य	=	श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव में वर्तमान रहनेवाला का,
अग्नेः	=	प्राणापान, व शिल्पविद्या का हेतु, रूप, दाह तथा प्रकाश गुणों से युक्त देदीप्यमान अग्नि का, विद्युत का भी
चक्षुः	=	प्रकाशक, मार्गदर्शक एवं विज्ञापक है तथा वह सम्पूर्ण लोकों व सब सत्य विद्याओं का ज्ञाता, उपदेष्टा है।
द्यावा पृथिवी	=	वह द्युलोक, पृथिवी लोक और
अन्तरिक्षम्	=	आकाशादि लोक, लोकान्तरों को
आ+प्रा	=	सब ओर से व्याप्त होकर धारण, रक्षण कर रहा है
सूर्यः	=	वह सबका उत्पादक, प्रकाशक परमात्मा (सूर्य) देव ही
जगतः च	=	जंगम=चेतन जगत् और
तस्थुषः	=	स्थावर आदि सकल जड़ जगत् का
आत्मा	=	आधार (आत्मा) है, जो निरन्तर सर्वत्र व्याप्त होकर सबको संचालन करनेवाला है)

स्वाहा = मैं यह सत्य कहता हूँ। मधुर कोमल कल्याणकारी, प्रिय वाणी और हृदय से उस प्रभु का स्मरण, गुणगान करता हूँ।

भावार्थ—वह परमात्मा बड़े विचित्र, विलक्षण, अद्भुत स्वरूप और शक्तिवाला है। वह दिव्य गुण-कर्म-स्वभाववाले विद्वानों का एवं उनके दुःखनाश हेतु परम-उत्तम बल है, आश्रय है और वह भली भाँति सम्यक् प्रकार से (उनके हृदयों में) प्रकट, प्रकाशित, प्राप्त (पहुँचा हुआ) है, वह रागद्वेष रहित, मित्र भाववाले उपासक का, सूर्यलोक वा प्राण का, श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव में वर्तमान रहनेवाले का, प्राणापान व शिल्पविद्या का हेतु, रूप-दाह-प्रकाश गुणों से युक्त-देदीप्यमान अग्नि-विद्युत का भी प्रकाशक, मार्गदर्शक एवं विज्ञापक है तथा वह सम्पूर्ण लोकों वा सब सत्य विद्याओं का ज्ञाता, उपदेष्टा है। वह द्युलोक, पृथिवी लोक और आकाशादि लोक-लोकान्तरों को सब ओर से व्याप्त होकर धारण, रक्षण कर रहा है। वह सबका उत्पादक, प्रकाशक परमात्मदेव ही जंगम (चेतन) जगत् और स्थावर (जड़) आदि सकल जगत् का आधार (आत्मा) है जो निरन्तर सर्वत्र व्याप्त होकर सबका संचालन करनेवाला है। मैं यह सत्य कहता हूँ और मधुर, कोमल, कल्याणकारी, प्रियवाणी और हृदय से उस प्रभु का स्मरण (गुणगान) करता हूँ।

(१७)

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ꣳ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ ४॥

तत् = वह मेरा उपास्य देव

चक्षुः = सबका प्रकाशक, मार्गदर्शक और द्रष्टा है

देवहितम् = वह दिव्य गुण, कर्म, स्वभाववाले धर्मात्मा, विद्वान् एवं सेवकों का हितकारी है।

शुक्रम् = सब जगत् का कर्त्ता, शुद्ध-पवित्र, ज्ञान स्वरूप

पुरस्तात्	=	पहले से सदैव सृष्टि के पूर्व से ही, सम्मुख उपस्थित और आत्मा में अनुभूत हुआ है
उच्चरत्	=	वही विज्ञान स्वरूप ब्रह्म उत्तमता से सर्वत्र व्याप्त है और प्रलय के पश्चात् भी सर्व सामर्थ्यवान् रहेगा।
शरदः शतं पश्येम	=	उस ब्रह्म को हम सौ वर्ष तक देखते रहें
शरदः शतं जीवेम	=	(उसी की उपासना पूर्वक) सौ वर्ष तक जीवित रहें, प्राण धारण करें।
शरदः शतं शृणुयाम	=	उसके गुणों पर श्रद्धा-विश्वासवाले हम सौ वर्ष तक उसे सुनते रहें तथा
शरदः शतं प्रब्रवाम	=	अन्य मनुष्यों को उस नित्य ब्रह्म और उसके गुणों का सौ वर्ष तक प्रवचन (उपदेश) करते रहें
शरदः शतम्	=	सौ वर्ष की आयु पर्यन्त उसकी उपासना, कृपा और विश्वास पूर्वक
अदीनाः स्याम	=	हम स्वाधीन, समृद्ध और समर्थ बने रहें
च शरदः शतात्	=	और सौ वर्ष से भी
भूयः	=	अधिक समय तक उसके अनुग्रह से हम देखें, जियें, सुने, बोलें (उपदेश करें) और सर्वदा सर्वथा स्वतन्त्र रहें।

भावार्थ—वह मेरा उपास्य देव, सबका प्रकाशक, मार्गदर्शक और द्रष्टा है, वह दिव्य गुण, कर्म, स्वभाववाले धर्मात्मा, विद्वान् एवं सेवकों का हितकारी है। सब जगत् का कर्त्ता, शुद्ध-पवित्र, ज्ञानस्वरूप, पहले से, सदैव सृष्टि के पूर्व से ही सम्मुख उपस्थित और आत्मा में अनुभूत हुआ है। वही विज्ञानस्वरूप ब्रह्म उत्तमता

से सर्वत्र व्याप्त है और प्रलय के पश्चात् भी सर्व सामर्थ्यवान् रहेगा।

उस ब्रह्म को हम सौ वर्ष तक देखते रहें, उसीकी उपासना पूर्वक सौ वर्ष तक जीवित रहें, प्राण धारण करें। उसके गुणों पर श्रद्धा, विश्वास रखनेवाले हम सौ वर्ष तक उसे सुनते रहें तथा अन्य मनुष्यों को उस नित्य ब्रह्म और उसके गुणों का सौ वर्ष तक प्रवचन (उपदेश) करते रहें। सौ वर्ष की आयु पर्यन्त उसकी उपासना, कृपा और विश्वास पूर्वक हम स्वाधीन, समृद्ध और समर्थ बने रहें और सौ वर्ष से भी अधिक समय तक उसके अनुग्रह से हम देखें, जियें, सुनें, बोलें (उपदेश करें) और सर्वदा, सर्वथा स्वतन्त्र रहें।

(१८) गायत्री मन्त्र

ओम् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ओ३म्	=	वह सर्व रक्षक, सर्वानन्द स्वरूप परमात्मा
भूः	=	प्राण स्वरूप, प्राणों से भी प्रिय, प्राणों का भी प्राण, सब प्राणियों का जीवनदाता ईश्वर
भुवः	=	धर्मात्मा, मुमुक्षु, भक्त, मुक्तोंका सर्व दुःख विनाशक
स्वः	=	स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है
तत् (तस्य)	=	उस
सवितुः	=	सकल जगत् उत्पादक, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सबका पिता, स्वामी, समग्र ऐश्वर्य का दाता
देवस्य	=	दिव्य गुणों से युक्त, आनन्द प्रदाता, सर्व प्रकाशक, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमेश्वर के

वरेण्यम्	=	अतिश्रेष्ठ, वरणीय, ग्रहण और ध्यान करने योग्य
भर्गः	=	पाप नाशक, अज्ञानादि सब दोष (क्लेशों) को भस्म करनेवाले, शुद्ध पवित्र तेजः स्वरूप, परमार्थ विज्ञान स्वरूप को
धीमहि	=	हम सब अपने हृदय में धारण करें, (ध्यान करें)
यः	=	जो (वही परमात्मा)
नः	=	हमारी
धियः	=	बुद्धियों को निरन्तर (सदैव)
प्रचोदयात्	=	उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरित करे।

भावार्थ—वह सर्वरक्षक, सर्वानन्द स्वरूप परमात्मा, प्राणस्वरूप, प्राणों से भी प्रिय, प्राणों का भी प्राण, सब प्राणियों का जीवनदाता ईश्वर धर्मात्मा, मुमुक्ष, भक्त, मुक्तों का सर्वदुःख विनाशक, स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है।

उस सकल जगत् उत्पादक, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सबका पिता, स्वामी, समग्र ऐश्वर्य का दाता, दिव्य गुणों से युक्त, आनन्द प्रदाता, सर्वप्रकाशक, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमेश्वर के अतिश्रेष्ठ, वरणीय, ग्रहण और ध्यान करने योग्य, पाप नाशक, अज्ञानादि सब दोष (क्लेशों) को भस्म करनेवाले, शुद्ध-पवित्र, तेजःस्वरूप को हम लोग अपने हृदय में धारण (ध्यान) करें अथवा करते हैं। वही सम्यक् ध्यान और प्रार्थना किया हुआ, सबका इष्टदेव परमेश्वर अपने कृपा कटाक्ष और अपनी शक्ति से हमारी बुद्धियों को सब बुरे कामों से अलग करके सदा ब्रह्मचर्य, विद्या, विज्ञान, सद्धर्म, जितेन्द्रियत्व, परब्रह्मानन्द प्राप्ति आदि उत्तम कर्मों में प्रेरित करे।

इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना और इससे भिन्न किसी को भी अपना उपास्य-इष्टदेव, उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये।

(१९) समर्पण वाक्य

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ-काममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

हे दयानिधे ईश्वर	=	हे दया निधान प्रभो!
भवत्कृपया	=	आपकी कृपा से
अनेन जपोपासनादि कर्मणा	=	(हमारे द्वारा सम्पादित) इस जप, उपासना आदि कर्म के द्वारा
धर्मार्थ काम मोक्षाणाम्	=	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की
नः सद्यः	=	हमें शीघ्र ही
सिद्धिः भवेत्	=	सिद्धि (प्राप्ति) होवे। ऐसी हमारी आपसे नम्र प्रार्थना है।

(२०) नमस्कार मन्त्र

ओम् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

शम्भवाय	=	सुख स्वरूप ईश्वर के लिये
च	=	और
मयोभवाय	=	संसार में सर्वोत्तम सुखदाता के लिये
नमः	=	हमारा नमस्कार हो
शंकराय च	=	और कल्याण कर्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कार्यों को ही करनेवाला
मयस्कराय	=	अपने भक्तों को सुख देनेवाला और धर्म कामों में युक्त करनेवाले को
नमः	=	नमस्कार हो
शिवाय च	=	उस कल्याणी, मंगल स्वरूप के लिये और
शिवतराय	=	अतिशय कल्याण, मंगल कारक परमेश्वर के लिये
नमः	=	हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

भावार्थ—जो ईश्वर स्वयं सुखस्वरूप है और संसार में

सर्वोत्तम सुखदाता है उसके लिये हमारा नमन (नमस्कार) है। कल्याणकर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कार्यों को ही करनेवाला, अपने भक्तों को सुख देनेवाला और धर्मकार्यों में युक्त करनेवाले ईश्वर के लिये हमारा नमस्कारहै। उस कल्याणी मंगलस्वरूप के लिये और अतिशय कल्याण वा मंगलकारक परमेश्वर के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

भावार्थ—वह सर्वरक्षक प्रभु हमें आध्यात्किम, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दुःखों से निवृत्त करे और हमें अपने मोक्षानन्द की प्राप्ति करावे।

अमृत वचन

१. **तमेवैकं जानथ आत्मानम् अन्यो वाचो विमुञ्चथाः। अमृतस्यैषः सेतुः॥** (उप०)

उस ही एक आत्मा (परमात्मा) को जान लो, अन्य सब बातें छोड़ दो, यही मोक्ष का मार्ग है।

२. **इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहा वेदीन्महती विनष्टिः॥** (उप०)

इसी संसार में, इसी जीवन में यदि उसे (परमात्मा को) जान लिया तब तो ठीक है, बहुत अच्छी बात है, और यदि इसी मानव जीवन में उसे नहीं जाना तो समझो महाविनाश है।

३. **श्वो श्वो नोपासीत, को हिं पुरुषस्य श्वो वेद॥** (उप०)

आज की अपेक्षा कल पर बात मत टालो, क्योंकि इस मानव के कल को कौन जानता है? अतः भले काम को अभी से प्रारम्भ कर दो, देरी न करो।

ऋषियों का सन्देश

(१) विषयों को भोगकर, इन्द्रियों की तृष्णा को समाप्त करने वाला तुम्हारा विचार ऐसा ही है, जैसाकि जलती आग को बुझाने के लिए उसमें घी डालना।

(२) यह मानना तुम्हारा सबसे बड़ा अज्ञान है कि ''मैं कभी मरूँगा नहीं, ''यह शरीर बहुत पवित्र हैं'', ''विषय भोगों में पूर्ण और स्थायी सुख है,''तथा ''यह देह ही आत्मा है''।

(३) तुम्हारे मन में अच्छे या बुरे विचार अपने आप नहीं आते। इन विचारों को तुम अपनी इच्छा से ही उत्पन्न करते हो, क्योंकि मन तो यन्त्र के समान जड़ वस्तु है, उसका चालक आत्मा है।

(४) किसी के अच्छे या बुरे कर्म का फल तत्काल प्राप्त होता न देख कर तुम यह मत विचारो कि इन कर्मों का फल आगे नहीं मिलेगा। कर्म फल से कोई भी बच नहीं सकता, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा न्यायकारी है।

(५) संसार (=प्रकृति), संसार को भोगनेवाला (=जीव) तथा संसार को बनानेवाले (=ईश्वर) के वास्तविक स्वरूप को जानकर ही तुम्हारे समस्त दुःख, भय, चिन्ताएँ समाप्त हो सकती हैं और कोई उपाय नहीं है।

(६) ''मनुष्य जीवन ईश्वर प्राप्ति के लिए मिला है'', इस मुख्य लक्ष्य को छोड़कर अन्य किसी भी कार्य को प्राथमिकता मत दो, नहीं तो तुम्हारा जीवन चन्दन के वन को कोयला बनाकर नष्ट करने के समान ही है।

(७) तुम्हारे जीवन की सफलता तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अविद्या के कुसंस्कारों को नष्ट करने में ही है। यही समस्त दुःखों से छूटने का श्रेष्ठ उपाय है।

(८) जबतक तुम संसार के सुखों के पीछे छिपे हुए दुःखों को समझ नहीं लोगे, तब तक वैराग्य उत्पन्न नहीं होगा। बिना वैराग्य के चंचल मन एकाग्र नहीं होगा, एकाग्रता के बिना समाधि नहीं लगेगी, समाधि के बिना ईश्वर का दर्शन नहीं होगा, बिना ईश्वर-दर्शन के अज्ञान का नाश नहीं होगा और अज्ञान का नाश हुए बिना दुःखों की समाप्ति और पूर्ण तथा स्थायी सुख (=मुक्ति) की प्राप्ति नहीं होगी।

(९) तुम इस सत्य को समझ लो कि 'अज्ञानी मनुष्य ही जड़ वस्तुओं (=भूमि, भवन, सोना, चांदी) तथा चेतन वस्तुओं (=पति, पत्नी, पुत्र, मित्र आदि) को अपनी आत्मा का एक भाग मानकर, इनकी

वृद्धि होने पर प्रसन्न तथा हानि होने पर दु:खी होता है।'

(१०) तुम्हारे लोहे रूपी मन को, विषय भोगरूपी चुम्बक सदा अपनी ओर खींचते रहते हैं। ज्ञानी मनुष्य विषय भोगों से होने वाली हानियों का अनुमान लगाकर इनमें आसक्त नहीं होते, किन्तु अज्ञानी मनुष्य इनमें फँसकर नष्ट हो जाते हैं।

(११) महान् ज्ञान, बल, आनन्द आदि गुणों का भण्डार, ईश्वर एक चेतन वस्तु है, जो अनादिकाल से तुम्हारे साथ है, न कभी वह अलग हुआ, न कभी होगा। उसी संसार के बनानेवाले, पालन करनेवाले, सबके रक्षक, निराकार ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना तुम सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिए।

गीत

परमात्मा के सभी गीत गाओ।
तो आवागमन से सभी छूट जाओ॥

१. वह दु:खियों का हमदर्द अकेलों का साथी।
श्रुति जगदाधार है उसको बताती॥
अजर है अमर है शरण उसकी आओ।
तो आवागमन से सभी छूट जाओ॥
परमात्मा.....

२. है गागर में सागर भरा वेद वाणी,
चहुँ ऋषियों द्वारा गई जो बखानी॥
उसी दीव से मन का दीपक जलाओ।
तो आवागमन से सभी छूट जाओ॥
परमात्मा.....

३. वह आनन्दघन है सकल दु:ख हरैया।
पिता माता वही है सखा और भैया॥
उसी से करो प्रीत प्रीतम बनाओ।
तो आवागमन से सभी छूट जाओ॥
परमात्मा.....

४. हैं योगी समाधि में जिसको पुकारें।
जमाने के वैभव की चाहना विसारें॥
उसी में लगन सब तुम भी लगाओ।
तो आवागमन से सभी छूट जाओ॥
परमात्मा.....

आचार्य आनन्द मुनि (पूर्व-आचार्य रामदयालु)
द्वारा
पूर्वलिखित पुस्तकों की सूची

१.	भाष्यभूमिका सारः (संस्कृत-समास)	५.००
२.	रसालंकार छन्दोदीपिका (हिन्दी)	५.००
	(एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक के पाठ्यक्रम में निर्धारित)	
३.	हिन्दी-संस्कृत धातुकोषः	६५.००
४.	चुटकुला शतकम् (प्रथम भाग)	१०.००
५.	चुटकुला शतकम् (द्वितीय भाग)	१०.००
६.	क्रीडा पञ्च विंशतिः	३.००
७.	बाल संस्कृत वार्तालापः	५.००
८.	विशेष संस्कृत वार्तालापः	५.००
९.	संस्कृत सम्भाषण विधाः	५.००
१०.	निरुक्त पञ्चाध्याय सारः	५.००
११.	निरुक्त निर्वचनिका	३.००
१२.	दिल्ली संस्कृत निदर्शिका (समास)	२५०.००
१३.	दशाब्दी स्मारिका (समास)	२०.००
१४.	प्रायःप्रयोग संस्कृत धातु सूची	१५.००
१५.	कृभ्वस्ति प्रयोग संस्कृतम्	१५.००
१६.	अनादिवाक् (संस्कृत पत्रम्—वार्षिक)	७५.००
१७.	विभिन्न नवीन संस्कृत चार्ट (समस्त)	५०.००

अद्यतन रचना सूची

१८.	वैदिक सन्ध्योपासन विधिः (३य संस्करण)	१०.००
१९.	सांख्य दर्शनम् (टीका)	१५.००
२०.	इतो वा ततो वा (आप इधर हैं या उधर)	१०.००
२१.	आनन्द सूक्ति सरोवर (प्रथम भाग)	१६.००
२२.	प्रभु नाम की माला	(प्रेस में)

—: वर्तमान पता :—

वेद मन्दिर, लेखरामनगर (इब्राहीमपुर),
पो०-मुखमेलपुर, दिल्ली-११००३६
दूरभाष : ७२०२२४९, ७२०३००१

संक्षिप्त परिचय

आचार्य आनन्द मुनि (पूर्वनाम—रामदयालु)

हरियाणा जिला फरीदाबाद के कुण्डल ग्राम वासी एक साधारण किसान परिवार में जन्म। प्रारम्भिक शिक्षा प्रायः गुरुकुल गर्दपुरी और कोसीकलाँ (मथुरा) में। १९४१ ई. में भारत-पाक विभाजन के समय तिब्बिया कॉलिज, करौलबाग, दिल्ली में अध्ययनरत। पश्चात् विभिन्न विद्यालय और विश्वविद्यालयों में पढ़कर शास्त्री, विद्या भास्कर, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार, एम.ए., काव्य-वेदतीर्थ, तमिल कोर्स डिप्लोमा आदि अनेक योग्यताएँ प्राप्त की।

जीवन निर्वाह हेतु दिल्ली के डी.ए.वी. स्कूल में सं० अध्यापन कार्य और सेवा निवृत्ति। स्वतन्त्र कार्यों में संस्कृत भाषा तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार और शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु बालसभा, सं० कक्षाएँ, शिविर, भ्रमण, समारोह, सहायता, प्रवचन, प्रतियोगिता, चार्ट प्रकाशन आदि विविध कार्य। फलस्वरूप अनेक संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन, सम्मान, पुरस्कार। अनेक पुस्तकों का लेखन, प्रकाशन। "अनादिवाक्" सं० पत्र का सम्पादन। संस्कृत-सेवा संस्थान की स्थापना। अनेक संस्थाओं में पद ग्रहण और उनका कार्य सम्पादन।

सेवा निवृत्ति के उपरान्त जनसेवा, दान-धर्म, अध्यात्म-प्रवचन, लेखन और शास्त्र पठन-पाठन आदि कार्यों में संलग्न। स्वामी सत्यपति जी से वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण। १९९८ ई. में नेपाल और कैलास, मानसरोवर यात्रा। अद्यतन निवास—वेद-मन्दिर, लेखरामनगर (इब्राहिमपुर), पो० मुखमेलपुर, दिल्ली-३६। दूरभाष : ७२०२२४९, ७२०३००१।

प्रकाशक :

संस्कृत सेवा संस्थान

५९/८, मध्य मार्ग, तुगलकाबाद विस्तार,

नई दिल्ली-११० ०१९; दूरभाष : ६९८१००२